झारखंड उच्च न्यायालय रांची

सिविल रिट याचिका सं. **718/2014**

भीमल राम

याचिकाकर्ता

बनाम

1. मेसर्स भारत कोकिंग कोल लिमिटेड अपने अध्यक्ष प्रबंध निदेशक, धनबाद, डाकघर और थाना- धनबाद, जिला धनबाद के माध्यम से।
2. निदेशक (कार्मिक), बी. सी. सी. एल., कोयला भवन, कोयला नगर, धनबाद, डाकघर और थाना- धनबाद, जिला धनबाद।
3. महाप्रबंधक (एच. आर. डी.), बी. सी. सी. एल., कल्याण भवन, जगजीवन नगर, धनबाद, डाकघर और थाना- धनबाद, जिला धनबाद।
4. मुख्य प्रबंधक (पी)/पूछताछ अधिकारी, बी. सी. सी. एल., कोयला भवन, कोयला नगर, धनबाद, डाकघर और थाना - धनबाद, जिला धनबाद।

विरोधी पक्ष

कोरमः माननीय न्यायमूर्ति डॉ. एस. एन. पाठक

याचिकाकर्ता के लिए: श्री आशीष के. शेखर, अधिवक्ता

विरोधी पक्ष के लिए: श्री इंद्रजीत सिन्हा, अधिवक्ता

सुश्री अदिती डोंगरावत, अधिवक्ता

05/08.01.2024 : दोनों पक्षों को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय में एक प्रार्थना के साथ संपर्क किया है कि 12.10.2013 की तारीख का आदेश रद्द किया जाए, जिसके द्वारा उत्तरदाता संख्या 2 ने याचिकाकर्ता पर उत्तरदाता संख्या 3 द्वारा 02.07.2013 की तारीख के आदेश के माध्यम से लगाए गए '01.08.2013 से समय स्केल में निम्न ग्रेड में कमी' की सजा की पुष्टि की है।

इसके अतिरिक्त, यह प्रार्थना की गई है कि 02.07.2013 और 12.10.2013 के आदेशों को रद्द करने के बाद, उत्तरदाताओं को निर्देशित किया जाए कि वे याचिकाकर्ता को 01.08.2013 से समय

स्केल में निम्न ग्रेड में कमी के आदेश को वापस लें और राशि ₹5,47,180.50 की वसूली के आदेश को भी वापस लें।

3. अनावश्यक विवरणों को छोड़ते हुए, सी.बी.आई. ने आर.सी. मामला संख्या 4(ए)/07 D स्थापित किया है, जो धारा 120 (बी) के तहत और धारा 420/467/468/471 आईपीसी तथा धारा 13(2) के तहत धारा 13(1)(डी) पी.सी. अधिनियम, 1988 के तहत अपराध के लिए है, यह आरोप लगाते हुए कि जब याचिकाकर्ता उत्तरदाता के कार्यालय में कैशियर के रूप में तैनात था, उसने अन्य अधिकारियों के साथ मिलकर राजेंद्र प्रसाद सिंह (खाता सहायक) और राम नरेश सिंह (लेखाकार) के साथ आपराधिक साजिश में प्रवेश किया। यह भी आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्ता ने अवैध रूप से ₹5,47,180.85 की राशि अपने खाते में स्थानांतरित की। इसी तरह, राजेंद्र प्रसाद सिंह और राम नरेश सिंह ने भी अपने-अपने खातों में बड़ी राशि स्थानांतरित की, जो उत्तरदाताओं के श्रमिकों को उनके वेतन के रूप में दी जानी थी।

4. उपरोक्त आरोपों के आधार पर, याचिकाकर्ता के खिलाफ एक विभागीय कार्यवाही शुरू की गई और 30.06.2010 को चार्जशीट जारी की गई। याचिकाकर्ता ने आरोपों का खंडन करते हुए इसका जवाब दिया और कहा कि उसने कोई गलत कार्य नहीं किया, बल्कि वह केवल अपने वरिष्ठ अधिकारियों के निर्देशों का पालन कर रहा था। इसके बाद, विभागीय कार्यवाही शुरू की गई जिसमें याचिकाकर्ता को आरोपों का दोषी पाया गया। जांच रिपोर्ट के आधार पर, अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने 02.07.2013 की तारीख के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता के समय स्केल में 01.08.2013 से निम्न ग्रेड में कमी की सजा लगाई और आगे निर्देश दिया कि ₹5,47,180.05 की राशि को भी उसके सेवानिवृत्ति की तारीख से पहले उसकी वेतन से सामान्य ब्याज दर पर वसूली जाए, क्योंकि यह राशि धोखाधड़ी से निकाली गई थी। इससे आहत होकर, याचिकाकर्ता ने उत्तरदाता संख्या 2 के समक्ष अपील दायर की, लेकिन इसे 12.10.2013 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया और सजा का आदेश पुष्टि किया गया।

इसलिए, याचिकाकर्ता को इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के लिए मजबूर होना पड़ा।

5. श्री आशिष कुमार शेखर, याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत अधिवक्ता, विवादित आदेश पर आपत्ति जताते हुए कहते हैं कि यह कानून की दृष्टि में अस्वीकार्य है। अधिवक्ता का कहना है कि उसे झूठा आरोपित किया गया है और यह अन्य कर्मचारियों के इशारे पर किया गया है। अधिवक्ता ने यह भी कहा कि उसके वरिष्ठ अधिकारियों के निर्देश पर राशि उसके खाते में

स्थानांतरित की गई थी और इसलिए याचिकाकर्ता की ओर से कोई अवैधता नहीं थी। अधिवक्ता का कहना है कि सब कुछ नियमों और प्रचलित विनियमों के अनुसार किया गया था।

6. दूसरी ओर, विरोधी पक्ष की ओर से प्रस्तुत अधिवक्ता, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के तर्क का पुरजोर विरोध करते हुए कहते हैं कि याचिकाकर्ता आरोपों का दोषी पाया गया है। विभागीय कार्यवाही में, जांच अधिकारी ने उसे आरोपों का दोषी पाया और जांच अधिकारी की रिपोर्ट के आधार पर, अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने सजा का आदेश जारी किया, जिसे बाद में अपीलीय प्राधिकरण द्वारा पुष्टि किया गया। इसलिए, सजा का आदेश पूरी तरह से न्यायसंगत है और कानून यह स्पष्ट करता है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत यह न्यायालय साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन नहीं कर सकता और जब तक कोई कानूनी त्रुटियाँ या प्रक्रियात्मक त्रुटियाँ जो स्पष्ट अन्याय या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करती हैं, न हों, तब तक इसे हस्तक्षेप से बचना चाहिए।

7. दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं की प्रतिकूल प्रस्तुतियों को सुनने के बाद और रिकॉर्ड पर लाए गए दस्तावेजों की समीक्षा करने पर, यह न्यायालय इस विचार पर पहुँचता है कि हस्तक्षेप के लिए कोई मामला नहीं बनता है, निम्नलिखित तथ्यों और कारणों के आधार पर:

(I) जांच अधिकारी के निष्कर्षों पर विचार किया गया और अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा सजा का आदेश पारित किया गया, जिसमें स्पष्ट और वैध कारण दिए गए। इसे अपीलीय प्राधिकरण द्वारा पुष्टि की गई, जिससे हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

(II) रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं लाया गया है जो यह दर्शाता हो कि कार्यवाही में कोई प्रक्रियात्मक लापरवाही थी, बल्कि एक पूर्ण जांच की गई थी, जिसमें प्राकृतिक न्याय के प्रावधानों का पालन करते हुए याचिकाकर्ता को सुनवाई का पर्याप्त अवसर दिया गया।

(III) यह स्वीकार किया गया है कि जब दो प्राधिकरणों के समानांतर निष्कर्ष होते हैं, तो यह न्यायालय उसी में हस्तक्षेप से बचता है।

8. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ एवं अन्य के मामले में, (1995) 6 एससीसी 749 में इस प्रकार कहा है:

> *"उच्च न्यायालय अपीलीय प्राधिकरण के रूप में कार्य नहीं करता। इसकी अधिकारिता न्यायिक समीक्षा की सीमाओं द्वारा सीमित होती है ताकि कानून की त्रुटियों या प्रक्रियात्मक त्रुटियों को सुधार सके जो स्पष्ट अन्याय या प्राकृतिक*

न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करती हैं। न्यायिक समीक्षा किसी मामले का गुणात्मक निर्णय लेने के समान नहीं है जैसा कि अपीलीय प्राधिकरण करता है।"

(ii) सामग्री की अपर्याप्तता जांच अधिकारी के निष्कर्षों को रद्द करने का आधार नहीं हो सकती, न ही विभागीय कार्यवाही के मामलों में जांच अधिकारी/अनुशासनात्मक प्राधिकरण के स्थान पर कोई प्रतिस्थापित दृष्टिकोण लिया जा सकता है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मामले में एप्रेल एक्सपोर्ट प्रमोशन कौंसिल बनाम ए के चोपड़ा, (1999) 1 एससीसी 759 में इस प्रकार निर्णय दिया है:

16.उच्च न्यायालय ने यह स्थापित स्थिति नजरअंदाज कर दी कि विभागीय कार्यवाहियों में अनुशासनात्मक प्राधिकरण तथ्यों का एकमात्र न्यायाधीश होता है और यदि अपील अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, तो अपीलीय प्राधिकरण के पास भी साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करने और तथ्यों पर अपने निष्कर्ष पर पहुँचने की शक्ति/अधिकार होता है, क्योंकि वे एकमात्र तथ्य खोजने वाले प्राधिकरण होते हैं। एक बार जब साक्ष्यों के मूल्यांकन के आधार पर तथ्यों के निष्कर्ष दर्ज किए जाते हैं, तो उच्च न्यायालय सामान्यतः उन तथ्यात्मक निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक कि यह नहीं पाता कि दर्ज किए गए निष्कर्ष या तो बिना किसी साक्ष्य के थे या वे पूरी तरह से विकृत और/या कानूनी रूप से अस्वीकार्य थे। साक्ष्यों की पर्याप्तता या अपर्याप्तता को उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। चूंकि उच्च न्यायालय विभागीय कार्यवाहियों के दौरान दर्ज किए गए तथ्यात्मक निष्कर्षों पर अपीलीय प्राधिकरण के रूप में नहीं बैठता है, इसलिए न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते समय, उच्च न्यायालय सामान्यतः दोषी की गिल्ट के संबंध में अपने निष्कर्ष को विभागीय प्राधिकरणों के निष्कर्षों के स्थान पर नहीं रख सकता। यहाँ तक कि जब दंड या सजा लगाने की बात आती है, तो जब तक अनुशासनात्मक या विभागीय अपीलीय प्राधिकरण द्वारा लगाई गई सजा या दंड अस्वीकार्य न हो या ऐसी न हो जो उच्च न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोर दे, तब तक इसे सामान्यतः अपनी राय को प्रतिस्थापित नहीं करना चाहिए और कोई अन्य दंड या सजा लागू नहीं करनी चाहिए। यह प्रतीत होता है कि माननीय एकल न्यायाधीश और उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच ने इस स्थापित सिद्धांत को नजरअंदाज किया कि भले ही प्रशासनिक कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा लचीली होनी चाहिए और इसके आयाम बंद न हों, फिर भी न्यायालय, न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते समय, उन तथ्यात्मक निष्कर्षों की सहीता से संबंधित

नहीं होता जिनके आधार पर आदेश जारी किए गए हैं जब तक कि वे साक्ष्य द्वारा उचित रूप से समर्थित न हों और ऐसी कार्यवाहियों के माध्यम से प्राप्त किए गए हों जिनमें प्रक्रियात्मक अवैधताएँ या अनियमितताएँ न हों जो उस प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं जिसके द्वारा निर्णय लिया गया था। न्यायिक समीक्षा, यह याद रखना चाहिए, निर्णय के खिलाफ निर्देशित नहीं होती, बल्कि निर्णय लेने की प्रक्रिया की परीक्षा तक सीमित होती है। लॉर्ड हाइलशैम ने चीफ कांस्टेबल ऑफ़ नार्थ व्लेस पुलीस बनाम इवांस में अवलोकन किया:

"न्यायिक समीक्षा का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि व्यक्ति को उचित उपचार मिले, और यह सुनिश्चित करना नहीं है कि प्राधिकरण, उचित उपचार देने के बाद, किसी ऐसे मामले पर, जिसे उसे कानून द्वारा निर्णय लेने के लिए अधिकृत या निर्देशित किया गया है, ऐसा निष्कर्ष निकाले जो न्यायालय की दृष्टि में सही हो।"

22. इस मामले के स्थापित तथ्यों और परिस्थितियों में, हम यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं रखते कि माननीय एकल न्यायाधीश और उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच दोनों ने विभागीय प्राधिकरणों द्वारा दर्ज किए गए तथ्यात्मक निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने और सजा की मात्रा में हस्तक्षेप करने में स्पष्ट त्रुटि की, जैसे कि उच्च न्यायालय अपीलीय अधिकार क्षेत्र में बैठा हो। माननीय एकल न्यायाधीश और डिवीजन बेंच के निर्णयों से यह स्पष्ट है कि उत्तरदाता द्वारा किए गए "अयोग्य कार्य" के संबंध में विभागीय प्राधिकरणों द्वारा पाए गए निष्कर्षों पर पुनर्मूल्यांकन करने पर भी कोई दोष नहीं पाया गया। उच्च न्यायालय ने यह नहीं पाया कि शिकायतकर्ता द्वारा आरोपित घटना नहीं हुई थी। न ही माननीय एकल न्यायाधीश ने और न ही डिवीजन बेंच ने पाया कि जांच अधिकारी या विभागीय अपीलीय प्राधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष मनमाने या विकृत थे। वास्तव में, उच्च न्यायालय ने जांच के संचालन में कोई दोष नहीं पाया।

माननीय एकल न्यायाधीश का यह निर्देश कि उत्तरदाता को पिछले वेतन का हकदार नहीं माना गया और उसे कम से कम दो वर्षों के लिए शहर से बाहर तैनात किया जाना था, जिसे डिवीजन बेंच ने स्वीकार किया, स्वयं इस बात का प्रमाण है कि उच्च न्यायालय ने शिकायतकर्ता के मामले को पूरी तरह से माना, अन्यथा, न तो पिछले वेतन को रोकना आवश्यक था और न ही उत्तरदाता को कम से कम दो वर्षों के लिए शहर से बाहर तैनात करने का निर्देश देना आवश्यक था। हमारे अनुसार, उच्च न्यायालय ने उस सजा में हस्तक्षेप करने में त्रुटि की, जो विभागीय प्राधिकरणों द्वारा उत्तरदाता पर उसके सिद्ध

misconduct के लिए वैध रूप से लगाई जा सकती थी। यह कहना कि चूंकि उत्तरदाता ने मिस X को "वास्तव में परेशान" नहीं किया और उसने केवल "परेशान करने की कोशिश की" और "उसके साथ शारीरिक संपर्क बनाने में सफल नहीं हुआ", इसलिए सेवा से हटाने की सजा उचित नहीं थी, गलत था। उच्च न्यायालय को प्राधिकरण की विवेकाधिकार के स्थान पर अपने विवेक का प्रतिस्थापन नहीं करना चाहिए था। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में कौन सी सजा लगाई जानी चाहिए, यह एक ऐसा विषय था जो सक्षम प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र में विशेष रूप से आता है और उच्च न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी। उच्च न्यायालय का पूरा दृष्टिकोण दोषपूर्ण रहा है। उच्च न्यायालय का विवादित आदेश केवल इसी आधार पर बनाए नहीं रखा जा सकता। लेकिन मामले का एक अन्य पहलू है जो मौलिक है और मामले की जड़ तक जाता है और महिला कर्मचारियों के कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के मामलों से निपटने के दौरान अदालत के दृष्टिकोण से संबंधित है।

9. इसके अतिरिक्त, भारत संघ एवं अन्य बनाम गुणशेखरण के मामले में, (2015) 2 एससीसी 610 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अवलोकन किया है कि, "उच्च न्यायालय अपने अधिकारों का प्रयोग करते समय अनुच्छेद 226 और 227 के तहत साक्ष्यों के मूल्यांकन में नहीं जा सकता या यदि जांच प्रक्रियाएँ कानून के अनुसार की गई हैं, तो निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता, या साक्ष्य की विश्वसनीयता/पर्याप्तता में नहीं जा सकता, या यदि निष्कर्षों के आधार पर कुछ कानूनी साक्ष्य हैं, तो हस्तक्षेप नहीं कर सकता, या तथ्य की त्रुटियों को सुधारने में हस्तक्षेप नहीं कर सकता, चाहे वह कितनी भी गंभीर क्यों न हो, या दंड की अनुपातिकता में नहीं जा सकता जब तक कि यह न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोर न दे।"

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बिहार राज्य एवं अन्य. बनाम फूलपरी कुमारी के मामले में (2020) 2 एससीसी 130 में इस प्रकार निर्णय दिया है:

"6. उत्तरदाता के खिलाफ आपराधिक मुकदमा अभी भी एक सक्षम आपराधिक न्यायालय द्वारा विचाराधीन है। उत्तरदाता की सेवा से बर्खास्तगी का आदेश उसके खिलाफ आयोजित विभागीय जांच के परिणामस्वरूप था। जांच अधिकारी ने साक्ष्यों की जांच की और निष्कर्ष निकाला कि उत्तरदाता द्वारा अवैध संतोष की मांग और स्वीकृति का आरोप सिद्ध हुआ। माननीय एकल न्यायाधीश और उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच ने साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करने में त्रुटि की और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य उत्तरदाता की गिल्ट को इंगित करने के लिए पर्याप्त नहीं थे।

6.1. यह स्थापित कानून है कि विभागीय जांच के परिणामस्वरूप पारित आदेशों में हस्तक्षेप केवल "कोई साक्ष्य नहीं" होने की स्थिति में किया जा सकता है। साक्ष्य की पर्याप्तता न्यायिक समीक्षा के क्षेत्र में नहीं आती। आपराधिक मुकदमे में आवश्यक प्रमाण का मानक विभागीय जांच में समान नहीं होता। आपराधिक न्यायालय द्वारा साक्ष्य के कठोर नियमों का पालन किया जाना चाहिए, जहाँ आरोपी की गिल्ट को उचित संदेह से परे साबित करना होता है। दूसरी ओर, संभावनाओं का प्रबल होना उस परीक्षण का मानक है जिसका उपयोग दोषी को आरोप में सिद्ध करने के लिए किया जाता है।

6.2. उच्च न्यायालय को उत्तरदाता की बर्खास्तगी के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था, साक्ष्यों का पुनः परीक्षण करके और अनुशासनात्मक प्राधिकरण के निष्कर्षों से भिन्न दृष्टिकोण अपनाकर, जो जांच अधिकारी के निष्कर्षों पर आधारित था।"

चूंकि आरोप अनुशासनहीनता और कर्तव्यों की लापरवाही से संबंधित हैं, यह न्यायालय इस विचार पर है कि उत्तरदाताओं द्वारा याचिकाकर्ता के समय स्केल में 01.08.2013 से निम्न ग्रेड में कमी की सजा लगाने और याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति की तारीख से पहले ₹5,47,180.05 की राशि की सामान्य ब्याज दर पर वसूली करने में कोई अवैधता या कोई दोष नहीं किया गया है।

11. उपरोक्त अवलोकनों, न्यायिक निर्णयों और कानूनी प्रस्तावों के परिणामस्वरूप, याचिका को खारिज करने का उचित आधार है और इसे इस प्रकार खारिज किया जाता है।

(न्यायमूर्ति डॉ. एस. एन. पाठक)

यह अनुवाद संजय नारायण, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है|